पूज्य लालचंदभाई का प्रवचन
शिकोहाबाद, ता. २७-३-१९८९
श्री समयसार, गाथा ७३, प्रवचन नंबर P ०२

This pravachan was typed quickly for Pariyushan. Please report errors
यह प्रवचन, पर्युषण के लिए जल्दी लिखा है। कृपया त्रुटियाँ भेजें
WhatsApp +91 96648 57990 या rajesh@AtmaDharma.com

यह श्री समयसार जी परमागम शास्त्र है, उसका कर्ता-कर्म अधिकार है। उसका स्वाध्याय करेंगे। कर्ता और कर्म, पहले प्रथम यह आत्मा है वह ज्ञान का कर्ता है और पुण्य-पाप का कर्ता नहीं है। ज्ञानावरणादि ८ प्रकार का कर्म बंधता है, उसका भी कर्ता नहीं है और शरीर का जो भाग है देह, मन, वाणी, वाणी का कर्ता भी आत्मा नहीं है।

आत्मा ज्ञानं स्वयं ज्ञानं ज्ञानादन्यत्करोति किम्।

परभावस्य कर्तात्मा मोहोऽयं व्यवहारिणाम्।। (आत्मख्याति कलश ६२)

अनादि काल से आत्मा ज्ञानमय रहा है और अनंत काल तक वो ज्ञानमय ही रहने वाला है। और देहमय होता नहीं है कभी भी और जड़कर्ममय भी नहीं होता है। और रागादि विभाव भावरूप भी होता नहीं है। वह तो ज्ञानमय आत्मा है। तो आत्मा का स्वभाव ज्ञान और ज्ञान का स्वभाव आत्मा को जानना। ऐसा ज्ञान का करने वाला आत्मा है। आत्मा कर्ता और आत्मज्ञान उसका कार्य याने कर्म। कर्म याने कार्य। आत्मा का कार्य क्या है? अपने को निरंतर जानना, देखना वो आत्मा का कर्म नाम कार्य है। उसको अनादि काल से आत्मा भूल गया कि मैं ज्ञानमय हूँ इसलिए जानना देखना वही मेरा कर्त्तव्य एक ही मेरा कर्त्तव्य है, वो अनंत अनंत काल से भूल गया। और शरीर आदि नोकर्म ज्ञानावरणादिक द्रव्यकर्म जड़ अचेतन है, उसका कर्ता नहीं होने पर भी मैं उसका कर्ता हूँ ऐसी भ्रान्ति हो गयी है।

जो हाथ हिलता है, और पग स्वयं चलता है, स्वयं हाथ हिलता है, पग तो स्वयं चलता है उसका कर्ता नहीं होने पर भी उसकी दृष्टि तो ज्ञायक पर नहीं है और हाथ और पैर पर दृष्टि है, लक्ष्य है, तो उसकी और पुद्गल की क्रिया स्वयं अपने से होने पर भी ये क्रिया का प्रतिभास उपयोग में आता है, जैसे दर्पण में अग्नि का प्रतिभास आता है मगर अग्नि दर्पण में आती नहीं है। ऐसे स्वयं हिलता हाथ और स्वयं चलता पग, पाँव उसकी क्रिया ज्ञान में जानने में आती है, तो मैं केवल जाननहार हूँ ऐसा होना चाहिए, वो भूल गया। तो मैंने हाथ हिलाया और मैंने पग चलाया ऐसी दो द्रव्य के बीच में कर्ता कर्म सम्बन्ध का अभाव होने पर भी मैं कर्ता और ये जड़ क्रिया होती है, (वो) मेरा कार्य है ऐसा अनादि काल से दो द्रव्यों के बीच में कर्ता कर्म के सम्बन्ध का अभाव होने पर भी मैं कर्ता हूँ और वो मेरा कार्य है ऐसी भ्रान्ति अनादि काल से हुई है। वह भ्रान्ति है।

क्यूंकि ये जड़ पदार्थ भी परिणमनशील है। वो स्वयं कर्ता कर्म पुद्गल का पुद्गल में है। जीव का कर्ता कर्म जीव में है। जीव कर्ता हो जाये और हाथ हिले वह उसका कार्य-कर्म बन जावे ऐसा तीन काल में बननेवाला है नहीं। मानता है वह तो उसका अज्ञान है। ऐसे अंदर में जो पुण्य पाप की वृत्ति का उत्थान होता है, शुभाशुभ भाव की लागणी का कार्य होता है, संकल्प विकल्प की विभाव-विकार पर्याय प्रगट होती है।

जैसे हाथ हिलता है, ऐसे राग होता है। राग रागसे स्वयं होने पर भी, जैसे हाथ स्वयं हिलता है, उसकी दृष्टि हाथ ऊपर है ज्ञाता पर नहीं है तो मैंने हाथ हिलाया ऐसी भ्रान्ति अज्ञान मिथ्यात्व उत्पन्न हो जाता है। ऐसे पुण्य पाप का परिणाम भी स्वयं उत्पन्न होता है। नैसर्गिक है वो, ऐसा समयसार में संस्कृत का पाठ है। उसको करने वाला आत्मा नहीं है उसको जाननेवाला है, मगर करनेवाला नहीं है तो भी मैं जाननहार हूँ, वो भूल गया है। और रागका प्रतिभास, रागकी क्रिया स्वच्छ ज्ञान में प्रतिभास तो होती है। प्रतिभास के समय ज्ञान भिन्न ने राग भिन्न ऐसा भेदज्ञान का अभाव होने से अज्ञानी को ऐसी भ्रान्ति हो जाती है कि राग मैंने किया। मैंने ज्ञान किया कि राग किया? उसका विचार भी कर्ता नहीं है तो राग कि साथ कर्ता कर्म की भ्रान्ति हो गयी।

आत्मा कर्ता और रागादि मेरा कार्य-कर्म वो अज्ञानमय भाव है। क्यूंकि स्वभाव और विभाव के बीच में कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है और जीव और अजीव के बीच में भी कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है। हाँ, कर्ता कर्म सम्बन्ध इतना है कि आत्मा कर्ता और आत्मा का अतीन्द्रिय ज्ञान हुआ इन्द्रियज्ञान की बात नहीं है। इन्द्रिय ज्ञान ज्ञान नहीं है ज्ञेय है। तो अतीन्द्रिय ज्ञान के द्वारा, जो आत्मा स्वसंवेदन ज्ञान के द्वारा प्रत्यक्ष हो जाता है। अनुभव में वेदन प्रत्यक्ष आता है। तो वो जो अतीन्द्रिय ज्ञान कर्म नाम कार्य है आत्मा का, वो स्वभाव क्रिया है और आत्मा उसका कर्ता है ऐसा कर्ता कर्म एक द्रव्य में होता है और स्वजाति में होता है। क्या कहा? एक द्रव्य में होता है और स्वजाति के बीच में कर्ता कर्म सम्बन्ध होता है। आत्मा ज्ञानमय है, के आत्मा का ज्ञान उसका कर्म है आत्मा कर्ता एक द्रव्य हो गया और दूसरा स्वजाति हो गई। आत्मा चेतन और परिणाम चेतना वो स्वजाति का परिणाम हुआ। अपनी जाती का परिणाम हुआ तो उसके बीच में कर्ता कर्म सम्बन्ध व्याप्य व्यापक संबंध बनता है।

परद्रव्य के साथ कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं होता है जड़चेतन के बीच में, और आत्मा चेतन और रागादि विभाव भाव, ये विभाव भाव है, स्वजाति भाव नहीं है। इसलिए परमार्थ दृष्टि से देखा जाए तो आत्मा का स्वभाव के समीप जाकर देखे तो राग के साथ कर्ता कर्म सम्बन्ध नहीं है। तो कर्ता कर्म अधिकार में ये कर्ता कर्म अधिकार हज़ारो लाखो दिगम्बर का शास्त्र है, मगर स्पेशयल कर्ता कर्म अधिकार समयसार में आया। ये समयसार में कर्ता कर्म अधिकार आने का कारण है कि उस समय इतना मिथ्यात्व अन्धकार फ़ैल गया था की कोई लोग मानता था की ईश्वर कर्ता है। ईश्वर जीवों को सुखी-दुखी करता है, ऐसी भ्रान्ति फ़ैल गयी थी तो उसका निषेध करने के लिए एक द्रव्य दूसरे द्रव्य का कर्ता हो सकता नहीं है, यह बात कर्ता कर्म अधिकार में उसने लिखी।

दूसरी बात ऐसा अन्धकार फेल गया की जैसे जैसे कर्म का उदय आता है ऐसे ऐसे क्रोधादि क्रिया हो जाती है मैं क्या करूं? क्रोध करना तो नहीं है मेरे को मगर चारित्र मोह कर्म का उदय आया तो क्रोध

हुआ याने वो जड़कर्म कर्ता और ये विभाव भाव उसका कर्म ऐसी अनादि काल की भ्रान्ति थी तो आचार्य भगवान ने कहा की जड़ पदार्थ से राग होता नहीं है और राग जो अपने स्वभाव को भूलकर करता है तो अज्ञानी बन जाता है और अकर्ता बनता है तो ज्ञानी बन जाता है। ऐसे कर्ता कर्म अधिकार स्पेशयल आया। सारा समयसार में ४१५ गाथा है उसमें ज़्यादा से ज़्यादा कर्ता कर्म अधिकार की गाथा है। याने आत्मा ज्ञाता होने पर भी अनादि काल से अपने आप दूसरे के उपदेश बिना स्वयं मैं ज्ञाता हूँ भूलकर मैं कर्ता हूँ ऐसे अनादि काल से भ्रान्ति उसकी हो गयी है। भ्रान्ति टालने के लिए कर्ता कर्म अधिकार है।

और इससे भी ज़्यादा सूक्ष्म ये ७३ गाथा में कहना है। राग का कर्ता तो है ही नहीं आत्मा। कर्ता माननेवाला अज्ञानी बन जाता है। राग का कर्ता मानता है वो अज्ञानी बनता है। अज्ञानी है इसलिए राग का कर्ता है ऐसा नहीं है। क्या कहा? अज्ञानी है इसलिए राग का कर्ता है ऐसा नहीं है। राग का करने वाला मैं हूँ ऐसा जो मानता है वह वो समयमें एक समय के लिए अज्ञानी बनता है। दूसरे समय अरे! मैं तो ज्ञाता हूँ राग का करनेवाला नहीं हूँ तो सम्यग्ज्ञान प्रगट हो जाता है। ज्ञान अभिमुख हो जाता है। अभी इससे ज़्यादा सूक्ष्म बात इधर तो ये करनी है की आत्मा कर्ता और आत्मज्ञान का परिणाम सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र का जो परिणाम उत्पन्न होता है व्यवहार मोक्षमार्ग का वो कर्ता है ही नहीं वो तो स्वभाव और विभाव के बीच में कर्ता कर्म संबंध नहीं है।

मगर आत्मा चेतन है चैतन्य उसका गुण है और ज्ञान चेतना उसका परिणाम है। तो जब ज्ञान चेतना परिणाम प्रगट होता है आत्माश्रित, वो स्वयं उसका षटकारक से प्रगट होता है। मैं आत्मज्ञान का करता मैं नहीं हूँ। मैं वो कार्य का ज्ञाता हूँ वो भी व्यवहार है। क्या कहा? कि वो जो ज्ञानचेतना प्रगट होती है जिसमें आनंद आता है अतीन्द्रिय आनंद सम्यग्ज्ञान की पर्याय की बात चलती है। वो होता है ऐसा मैं जानता हूँ। मैंने किया ऐसा सम्यग्ज्ञान में जानने में आता नहीं है। और कभी शास्त्र में आवे की ज्ञानक्रिया स्वभावभूत होनेसे निषेध करनेमें नहीं आई इसलिए कर्ता है वो बात कर्ता का उपचार से कर्ता है ऐसा समझना चाहिए। व्यवहार नय से कथन है। परिणाम का कर्ता कहना वो भी व्यवहार नय का कथन है, क्यूंकि आत्मा अकारक, अवेदक, अकर्त्ता है अभोक्ता है आत्मा। आत्मा ज्ञाता है, ज्ञाता है इसलिए जानने वाला तो है मगर करनेवाला नहीं है। जाननक्रिया भी स्वयं होती है, ओहोहों! ऐसा ज्ञान जानता है मेनें किया ज्ञान। ऐसा जानता नहीं है। तो दृष्टि पर्याय से हटकर द्रव्य पर आती है तो उसको आत्मा का अनुभव हो जाता है। क्यूंकि परिणाम सत, अहेतुक निरपेक्ष होता है क्यूंकि परिणाम को उत्पन्न करने वाला ध्रुव तत्त्व नहीं है। आहाहा! ऐसी अलौकिक बात ये ७३ नंबर की गाथा में शिष्य का प्रश्न है। शिष्य का प्रश्न पहले पढ़े।

अब वो प्रश्न करता है कि: यह आत्मा, मेरा आत्मा, **किस विधि से आस्रवों से निवृत होता है?** याने जो मिथ्यात्व नाम का आस्रव, अज्ञान नाम का आस्रव, ये कषाय का परिणाम जो उत्पन्न होता है इसमें मेरे को दुःख का वेदन आता है तो वो भी दुःख नहीं चाहिए। दुःख की निवृति का अर्थात आस्त्रव की निवृति की विधि क्या है? विधि, जैसे हलवा बनाने की विधि आती है न ऐसे ये दुःख की निवृति का उपाय क्या है ऐसे जिज्ञासु जीव ने पुछा। इसका अर्थ ये हुआ कि अपनी पर्याय में दोष तो है। दोष का तो स्वीकार कर लिया। स्वछन्दी नहीं है, निश्चयाभासी नहीं है, समझे? क्या समझे?

मुमुक्षुः निश्चयाभासी नथी और दोष का (स्वीकार करनेवाला है).

उत्तरः स्वछन्दी नहीं है। दोष का स्वीकार कर लिया कि प्रभु मेरा स्वभाव का अवलम्बन नहीं आता है और मुझे शान्ति का वेदन नहीं आता है। सुख का वेदन नहीं आता है। २४ घंटे संकल्पविकल्पउत्पन्न होता है और इससे मैं दुखी हूँ। प्रभु कोई सुख का उपाय मेरे को बताओ। सच्चा देव-गुरु-शास्त्र की पहचान तो हो गई। वो सच्चा देव शास्त्र गुरु की पहचान होने के बाद उसको संतोष नहीं है। ठीक है दूसरे के पास तो कुदेव-कुगुरु-कुशास्त्र है वो तो संसार में सूलेगा। मैं तो सच्चा देव-गुरु-शास्त्र की समीप आ गया उसमें कुछ है नहीं माल, आ गया तो क्या? देव-गुरु-शास्त्र तेरे को मोक्ष देने वाला है? देना लेना तो व्यवहार की बात है। सब है ही नहीं. व्यवहार ही नहीं है ऐसा। निश्चय तो नहीं है व्यवहार की बात कोई सम्यग्दर्शन दे देवे ने शिष्य ले लेवे ऐसा व्यवहार भी नहीं है आहाहा! तो क्या करना अभी? कि जो अरिहंत देव, आत्मज्ञानी गुरु जिनवाणी यह आत्मा का स्वरुप जो फरमाते है ऐसा स्वरुप का निर्णय करके उसका प्रत्यक्ष अनुभव करके आस्त्रव की निवृत्ति हो जाती है। याने अज्ञान की निवृति हो जाती है तो अज्ञान याने दुःख की भी निवृति हो जाती है। कर्म चेतना ही प्रगट नहीं होती है तो कर्म फल चेतना होती नहीं, तो ज्ञान चेतना प्रगट हो जाती है। तो शिष्य का प्रश्न है कि प्रभु मैं दुखी हूँ, दुःख की निवृति का उपाय बताओ! आहाहा! तो आचार्य भगवान उपाय बताते है। आचार्य भगवान ऐसा उपाय नहीं बताते है कि तुम ऐसा करो, ऐसा करो, ऐसा करो, दान करो, शियल करो, व्रत करो, तप करो, प्रतिक्रमण जात्रा करो आहाहा! मंदिर बनाओ। ऐसी बात तो नहीं है वह तो शुभ भाव है। कर्ता बुद्धि की साथ साथ मिथ्यात्व की साथ साथ मिथ्यात्व साथ रख के शुभ भाव अनंत बार किया मगर मिथ्यात्व छोड़कर शुभ भाव आया नहीं! क्या फिर गया शब्द!

मुमुक्षुः मिथ्यात्व छोड़कर शुभ भाव आया नहीं! कमाल कर दिया साहब!

उत्तरः पहले मिथ्यात्व सहित शुभ भाव करता था! अब आत्मभान हुआ तो मिथ्यात्व रहित शुभ भाव आता है उसको जानता है मगर करता नहीं है। कार्य उलट पुलट हो गया आहाहा! बंध मार्ग से निकल गया मोक्ष मार्ग में आ गया, अल्प काल में मुक्ति होने वाली है। आहाहा! ऐसा अपूर्व ये समयसार! हम तो जन्म से स्थानकवासी था समझे? आप तो जन्म से दिगंबर है।

मुमुक्षुः वो भी चौपट। कुछ पता नहीं है।

उत्तरः प्रभु ये क्या कुंद-कुंद आदि आचार्य भावलिंगी संत फरमाते है तेरा स्वरुप आहाहा! लक्ष में लें, लक्ष में लें, शान्ति से विचार कर व्यवहार का पक्षपात छोड़कर निश्चय का पक्ष में आ जा और निश्चय का पक्ष छोड़कर अनुभव में आ जा। आहाहा! निश्चय का पक्षवाला भी संसारी है। आहाहा! व्यवहार का पक्ष वाला तो संसारी है ही मगर समयसार पढ़नेवाला भी जो आत्मा का अनुभव ना करे और आत्मा का स्वरूप जैसा है ऐसा पक्ष का विकल्प करें तो वो भी संसार है। आहाहा!

मुमक्षुः साब! अफ़र फ़रमान!

उत्तरः ये जिनागम में कोई छूटछाट नहीं है। आहाहा! ऐसा शिष्य का प्रश्न है, उत्तर भी बढ़िया से बढ़िया अभी आएगा! देखा!

अहमेक्को खलु सुद्धो णिम्ममओ णाणदंसणसमग्गो।

तम्हि ठिदो तच्चित्तो सव्वे एदे खयं णेमि ॥७३॥

मैं एक, शुद्ध, ममत्वहीन रु ज्ञानदर्शनपूर्ण हूँ।

इसमें रहूं स्थित, लीन इसमें, शीघ्र ये सब क्षय करूँ ॥७३॥

क्षय की ध्वनि है। आहाहा! ये पांचवा आरा (काल) है चौथा आरा (काल) नहीं है। पंचम काल है। समझे? तो ये पंचम काल में क्षायिक सम्यगदर्शन नहीं होता है और क्षायिक चारित्र भी नहीं होता है। मगर पंचम काल में उपशम सम्यग्दर्शन और क्षयोपशम सम्यग्दर्शन होता है। मगर इधर ऐसा है कि कोई जीव क्षयोपशम सम्यग्दर्शन लेकर निकलता है पंचम काल में ये काल में तो अप्रतिहत रूप से, आहाहा! उसको नियम से आगे क्षायिक हो जाता है। आगे जब केवली-श्रुतकेवली के समीप हो गया निमित्त रूप से, और अपना उपादान, तो क्षायिक हो जाता है। इधर अभी क्षायिक नहीं है तो भी क्षय की ध्वनि है। आहाहा! अभी उसकी मूल गाथा २००० साल पहले कुन्दकुन्द आचार्य भगवान मद्रास से ८० मील दूर एक पोन्नुर हिल है। पोन्नुर का अर्थ सोना पोन्नुर का अर्थ सोना की हिल टेकरी (पहाड़) आहाहा! तपोभूमि है उसकी पादुका भी है। वहां से गया, महाविदेह क्षेत्र पधारे, यात्रा हुई यात्रा, बड़ी यात्रा, भगवान का शक्षत दर्शन। वो वहां से आकर इधर शास्त्र लिखा।

उसमें वो फरमाते है कि सुन भैया! कि ज्ञानी विचार करता है कि ऐसा पाठ है ज्ञानी याने जिसके अंदर मन वाला प्राणी हो विचार करने की शक्ति प्रगट हो गयी हो इतना क्षयोपशम तो हो गया है इसका नाम ज्ञानी है। ज्ञानी याने धर्मात्मा सम्यग्दृष्टि नहीं, सम्यग्दृष्टि को विचार करने की ज़रूरत रहती नहीं है। विचार तो जिसको अनुभव नहीं है, उसको विचार करने की ज़रूरत रहती है। और विचार करके भी अटकना नहीं है। विचार कर के निर्णय करना और निर्णय करने के बाद अनुभव कर लेना।

प्रथम और पश्चात। ये गाथा का पूर्वार्ध और उत्तरार्ध दो भेद है। पूर्वार्ध समझे? वहां अलप-विराम होता है। और उत्तरार्ध जो आता है पूरा हो जाता है। पूर्वार्ध में क्या कि आत्मा का स्वरुप क्या है ऐसा तुम समझकर प्रथम निर्णय कर ले। आहाहा! केवल सुनने से कार्य सिद्धि नहीं होती है और केवल शास्त्र स्वाध्याय करने से कार्यसिद्धि नहीं होती है। और ऊपर ऊपर का निर्णय से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। धारणा से भी साध्य की सिद्धि नहीं होती है। शास्त्र में गाथा लिखा था मुंह से बोला गाया, उसमे आत्मा (उससे कुछ) नहीं होता| वो तो विकल्प में शब्द की पर्याय है। उसमें आत्मा है नहीं। मगर तू निर्णय कर मैं कहता हूँ कि आत्मा का तेरा स्वरुप क्या है? तेरा स्वरुप मैं बताता हूँ। तेरा स्वरुप को मैं देता नहीं हूँ। तेरा स्वरुप को तू जानता नहीं है तो तेरा स्वरुप को मैं शब्द के द्वारा बताता हूँ। ऐसी मेरी करुणा का भाव थोड़ा आ गया है। आहाहा! निष्कारण करुणा है। अकारण करुणा। ज्ञानी स्वरुप में लीन रह सकता नहीं है तब उसको शास्त्र लिखने का भाव आ जाता है।

तो ज्ञानी विचार करता है। ज्ञानी याने ज्ञान जिसमें है प्रगट क्षयोपशम, मनवाला प्राणी। जिसको मन नहीं है उसको विचार करने की शक्ति (नहीं है)। हेय क्या और उपादेय क्या उसकी शक्ति पांच इन्द्रिय में नहीं है। मगर मन है मन! मनका दो प्रकार है। एक भावमन और एक द्रव्य मन। जैसे यह द्रव्य इन्द्रिय है

कान, वो तो जड़ है। ऐसा जो मन है इधर द्रव्य मन वो ऑपरेशन करने से दिखाई नहीं देता है। ऐसा मनोवर्गणा नामका सूक्ष्म परमाणु से बना हुआ एक आठ पंखुड़ी जैसा खुला हुआ कमल है न ऐसा इधर मन है। मन इधर नहीं है। जड़मन इधर है जड़मन है ना, द्रव्य मन ये इधर है और उसका संग से जो उपयोग वहां लगता है उसका अवलम्बन करता है उपयोग, आत्मा का अवलम्बन करे (उपयोग) तो तो द्रव्य मन का अवलम्बन छूटे और भावमन भी विश्राम हो जावे और आत्मज्ञान प्रगट हो जाता है। मगर उपयोग आत्मा में नहीं लगता है तो उपयोग मन के संग काम करता है तो भावमन के द्वारा जो विचार करके मैं एक हूँ, शुद्ध हूँ, निर्ममत्व हूँ और ज्ञान दर्शन से परिपूर्ण हूँ इस गाथा में है। ज्ञानी विचार करता है कि निश्चय से याने खरेखर एक साचु (सच्चा) और एक खोटुं (गलत) एक सत्यार्थ एक असत्यार्थ।

निश्चय से मैं एक हूँ आहाहा! तू ऐसा विचार करके निर्णय कर कि मैं एक हूँ, अनेक रूप नहीं हूँ। एक, अनेक का निषेध करता है। एक जो शब्द है वो अनेक का निषेध करता है। मैं पुरुष हूँ और मैं स्त्री हूँ और मैं देव हूँ और मैं मनुष्य हूँ। नहीं नहीं नहीं आहाहा! मैं १४ गुणस्थान वाला हूँ। नहीं तू एक है। आहाहा! चौदह गुणस्थान, मार्गणास्थान, जीव समास ये तो स्वांग है| ये तू नहीं है। इससे भिन्न तू तो एक ज्ञायक भाव है। मैं एक हूँ आहाहा! होना नहीं! हूँ! कभी? कभी पढ़े तभी जभी सुने तभी। एक हूँ आहाहा! मैं एक हूँ।

दूसरा शब्द मैं शुद्ध हूँ। मैं शब्द है न मैं, अक्षर है मैं. वो आदि दीपक है। आदि दीपक में मैं शब्द लेना है। मैं एक हूँ, मैं शुद्ध हूँ। मैं निर्ममत्व हूँ। मैं दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण हूँ। मैं एक हूँ और मैं शुद्ध हूँ आहाहा! शुद्ध होना नहीं है मेरे को। जो नहीं है उसकी भावना नहीं होती है और जो है उसकी भावना हो सकती है। जो है उसका ध्यान हो सकता है, जो नहीं है उसका ध्यान हो सकता नहीं है। नहीं है उसका ज्ञान होता है मगर ध्यान होता नहीं। क्या कहा? है उसका ध्यान होता है। नहीं है उसका (ध्यान होता नहीं)। पूर्व पर्याय गयी उसका ध्यान कैसे करे? और भावी पर्याय आयी नहीं उसका ध्यान कैसे करे? और वर्तमान में तो राग है उसका ध्यान कैसे करे? ध्यान का तो विषय होना चाहिए और ध्यान का विषय अविनाशी होना चाहिए। ध्यान समयवर्ती है और ध्येय त्रिकालवर्ती है। और जब ध्येय का ध्यान होता है तब धर्म ध्यान प्रगट हो जाता है। सम्यग्दर्शन, ज्ञान, चारित्र। ध्यान करने को बैठता हूँ मैं मगर धोला (सफ़ेद), लाल, पीला ऐसा प्रकाश दिखता है। क्यों? कि जो ध्येय है उसका स्पष्ट ज्ञान नहीं है उसके पास। ध्येय का स्पष्ट ज्ञान बिना तो धर्म ध्यान प्रगट होता नहीं है। तो अभी ध्येय की बात चलती है। ध्यान की बात आगे करेंगे। मैं एक हूँ मैं शुद्ध हूँ। संवर, निर्जरा और मोक्ष वह क्षणिक शुद्ध है अनित्य शुद्ध है वो तो मिथ्यादृष्टि के पास है ही नहीं। तो मैं हूँ ऐसा हो सकता नहीं है। जो है उसके साथ हूँ लगता है। हूँ विद्यमान, वर्तमान, हूँ, शुद्ध हूँ अभी. कहे अभी तो मैं मिथ्यादृष्टि हूँ। तू मिथ्यादृष्टि नहीं है। मैं मिथ्यादृष्टि हूँ तो परंपरा मिथ्यादृष्टि चलेगी। मिथ्यात्व का नाश का उपाय वो नहीं है। मैं अशुद्ध नहीं हूँ मैं शुद्ध हूँ। मैं निरपेक्ष शुद्ध हूँ। संवर, निर्जरा और मोक्ष सापेक्ष शुद्ध है, अनित्य शुद्ध है। मैं तो निरपेक्ष, अनादि अनंत, शाश्वत शुद्ध ही हूँ। आहाहा! शुद्ध ही हूँ। आहाहा!

तीसरा बोल - **ममता रहित हूँ**। प्रभु ममता तो है। मेरे पास ममता तो है। यह देह प्रति ममता। कुटुंब प्रत्ये ममता। ये शास्त्रज्ञान का उघाड़का अभिमान प्रत्ये ममता। कोई प्रमुख हो, सेक्रेटरी, सत्ता की

ममता। सत्ता की ममता। पैसा की ममता। हमारे रिश्तेदार सगे वाला बहुत हमारा व्यवहार ऐसा है - एसी ममता ममता ममता में उसका कल गुमाता है। मगर जो परिणाम में ममत्व भाव होता है वो तू नहीं है। तेरे में ममत्व उत्पन्न ही नहीं होता है। तू तो ममत्व से रहित है। निर्ममत्व तेरा स्वभाव है।

मुमुक्षुः ममता के समय ही निर्ममत्व है।

उत्तरः ममत्व का पर्याय में है उस समय ममता से रहित निर्ममत्व है। उसका लक्ष करने से परिणाम का ममत्व छूट जाता है। इधर (अंदर) अहम आ जाता है, पर से ममत्व छूट जाता है। इधर (अंदर) अहम आ जाता है तो पर से ममत्व छूट जाता है। ऐसा शिष्य का प्रश्न का ही उत्तर चलता है कि ममत्व का नाश कैसे हो? परिणाम में ममत्व है। मेरा मेरा मेरा लड़का, मेरी लड़की, आहाहा! मेरा पिता, मेरी मम्मी आहाहा! तेरा क्या है, कुछ नहीं है आहाहा! भ्रान्ति है। परिणाम तेरा नहीं है तो परपदार्थ मेरा है वो तो, आहाहा! एक समय का परिणाम उत्पन्न होता हैं, वो आत्मा का स्व नहीं है। एक चिदानंद भगवान आत्मा, ज्ञानानंद परमात्मा वो स्व है और मैं उसका स्वामी हूँ। परिणाम का मैं स्वामी नहीं हूँ।

मुमुक्षुः मिथ्यादृष्टि का परिणाम भी पर मेरा है। ऐसा नहीं है? वो भी मेरा है ऐसा नहीं है?

उत्तरः नहीं है, बिलकुल नहीं है। वो मिथ्यात्व की पुष्टि होती है। मिथ्यात्व का परिणाम मेरा है तो मिथ्यात्व जायेगा नहीं। मिथ्यात्व का परिणाम से भिन्न निर्ममत्व परमात्मा मैं हूँ तो मिथ्यात्व चला जायेगा।

मुमुक्षुः ऐसे दोष स्वीकार किया तब उसका निषेध किया तब स्वभाव का लक्ष किया?

उत्तरः मगर स्वीकार करने के बाद अटकने की बात नहीं है। दोष तो स्वीकार किया मगर दोष को स्वीकार करने के बाद दोष को टालने का प्रश्न है। रखने का प्रश्न हुआ नहीं है। क्या कहा? डॉक्टर के पास जाता है। बुखार है चार डिग्री? तो चार डिग्री का ज्ञान तो हुआ तो रखने के लिए ज्ञान हुआ कि टालने के लिए?

मुमुक्षुः टालने के लिए।

उत्तरः तो ही डॉक्टर के पास जाता है न भाईसाब। तो टालने की बात है न अभी? स्वीकार करने से तो ममत्व छूटता नहीं है। ऐसा बंध अधिकार में आचार्य भगवान ने फ़रमाया है। बंध अधिकार है, बंध अधिकार। बंध अधिकार। तो उसमें फ़रमाया आचार्य भगवान ने कि मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ तो बंध छूटने का उपाय वो नहीं है। उसको छीणी मार दे तो बंध का अभाव हो जायेगा। मैं मिथ्यात्दृष्टि हूँ, मैं मिथ्यात्दृष्टि हूँ, मैं मिथ्याद्रष्टि हूँ, मैं पापी हूँ, मैं संसारी हूँ, ऐसे शृंखला बार बार विचार करने पर भी वो मिथ्यात्व छूटता नहीं है। मिथ्यात्व से भिन्न जब आत्मा का ध्यान करता है जीव आहाहा! तब सम्यग्दर्शन प्रगट (हो जाता है)। सम्यग्दर्शन का उत्पाद, मिथ्यात्व का व्यय और ध्रुव का सद्भाव आहाहा!

ध्रुव का ध्यान करने से, परमात्मा का ध्यान करने से परमात्मा का ध्यान करने कहाँ जाना मंदिर जाना की सम्मेद-शिखर? ये निज परमात्मा अंदर विराजमान है उसका ध्यान कर। यह उपदेश कथन पद्धति में ऐसा आता है कि ध्यान कर मगर ध्यान सहज हो जाता है। मगर उपदेश बोध और सिद्धांत बोध में समझाने के लिए एक साथ कहा जाता है। आहाहा! मिथ्यात्व है, मिथ्यात्व है, स्वीकार तो शिष्य ने कर लिया। मगर मिथ्यात्व का नाश कैसे होवे ऐसा प्रश्न का उत्तर आया की मिथ्यात्व तेरे में है नहीं। मेरे में है ऐसा मैंने स्वीकार किया और मैं कहता हूँ की तेरे में नहीं है। वो क्या बात हैं? तेरी दृष्टि पर्याय पर है तो

पर्याय से तू बोलता है की मेरे में मिथ्यात्व है। (मगर) पर्याय को गौण कर, पर्यायकों रखकर चिदानंद भगवान आत्मा सामान्यको देख तो तेरे में मिथ्यात्व है ही नहीं। और मिथ्यात्व का रहित जो स्वभाव भाव है उसका अवलम्बन करने से पर्याय में से मिथ्यात्व टल जाता है। उसका व्यय और सम्यग्दर्शन की उत्पत्ति हो जाती है। यह जैन दर्शन है न? बहुत लॉजिकल है ऐसा अंधश्रद्धा का विषय नहीं है। आगम से, युक्ति से, अनुमान से और अनुभव से सिद्ध हो जाता है। आहाहा! बंध अधिकार में बहुत लिखा ऐसे मैं बंधा हूँ, मैं बंधा हूँ। मेरे में राग है, मेरे में राग है, ऐसा विचार करने से बंध छूटता नहीं है। आहाहा! आत्मा का अनुभव कर तो बंध छूट जाता है।

निश्चय से मैं एक हूँ, आहाहा! **मैं शुद्ध हूँ** और **मैं ममत्व रहित हूँ**। ममत्व रहित होता है वह दूसरा तत्व है और ममत्व रहित हूँ वो दूसरा तत्व है। ममत्व रहित है वह जीव तत्व है, ममत्व से रहित होता है वह संवर तत्व है। संवर नया प्रगट होता है और जीव तो जूना है पुराना। वो तो ममत्व से रहित त्रिकाल है, उसमें वो ममत्व का पर्याय प्रगट होता नहीं है। जो प्रगट हो जाये तो मैं शुद्ध हूँ वो शब्द खोटा पड़ता है। पर्याय में ममत्व मलिनता होने पर भी आत्मा पवित्र है। पर्याय अपवित्र होने पर भी आत्मा पवित्र रह गया हैं। जल मैला हो गया अपवित्र तो भी जल अपना स्वभावको छोड़ता नहीं है। वह तो निर्मल रहता है। आहाहा! उसका एक अंश भी 100% निर्मल है स्वभाव। सामान्य स्वभाव 100% शत प्रतिशत निर्मल है। ऐसे सामान्य स्वभाव की बात बताता है, जब ज्ञानीका जन्म होता है तब सामान्य का पहलु बहार आता है।

मुमुक्षुः बराबर। परम सत्य!

उत्तरः तहाँ तक सब विशेष को ही आत्मा मानता है, अनात्मा को ही आत्मा मानता है। आत्मा एक है उसका पहलु (पड़खा) दो है, एक सामान्य और एक विशेष। विशेष में अशुद्धि है तब सामान्य शुद्ध और परिपूर्ण रहता है। विशेष में मति श्रुत ज्ञान होने पर भी भगवान आत्मा तो ज्ञान से दर्शन से परिपूर्ण रहता हैं। ये आता है ज्ञान से दर्शन से परिपूर्ण हूँ ऐसा आएगा। ममता रहित हूँ और **दर्शनज्ञान से पूर्ण हूँ**। अभी तो मति श्रुत ज्ञान है केवलज्ञान भी नहीं हुआ। तो पूर्ण दर्शन ज्ञान से अभी कैसे पूर्ण हूँ? के तेरी नज़र पर्याय पर है और मेरी नज़र द्रव्य पर है। तू पर्याय को आत्मा मानता है और मैं द्रव्य को आत्मा मानता हूँ| हमारी और तेरी बीच में इतना बड़ा फर्क है। पदार्थ का प्रतिभास में तफ़ावत है ज्ञानी और अज्ञानी का पदार्थका प्रतिभास में (फर्क है)। एक पर्यायको आत्मा मानता है अने एक द्रव्य को आत्मा मानते मानते पर्याय को जानता है। मगर पर्याय को आत्मा मानता (नहीं है)। क्या कहा?

मुमुक्षुः सही बात कही एक पर्याय को जानता है द्रव्य को मानते मानते।

उत्तरः एक पर्याय को जानकार पर्याय को आत्मा मान लेता है, मिथ्यादृष्टि हो जाता है। दूसरा सम्यग्दृष्टि द्रव्य को आत्मा मानकर पर्याय को जानता है मगर पर्याय मेरी है ऐसा मानता नहीं है। आहाहा!

मुमुक्षुः निर्दोष बात है यह।

उत्तरः निर्दोष बात है ये। दिगंबर संतो ने तो निहाल कर दिया है। ये आपका ही शास्त्र है। हम तो नया दिगंबर है।

मुमुक्षुः मूल दिगंबर बताया| साहब!

उत्तरः प्रभु वो तो जो अनुभव करे वो दिगंबर है। आत्मा का अनुभव करे उसका नाम भाव दिगंबर

है। भाव दिगंबर। नाम दिगंबर हैं| नाम से तो जैन है नाम से तो जैन है मगर भाव से जैन होना वो कोई अपूर्व बात है। आत्मा का अनुभव करने की ये बात है भैया। नाम से तो सब दिगंबर जैन है। सब दिगंबर जैन है मगर भाव से दिगंबर होना वो कोई अपूर्व चीज़ है।

विरला जाने तत्वको विरला सुनता है कोई,
विरला ध्यावे कोई - वो विरला ही होता है।

दर्शन ज्ञान से परिपूर्ण। प्रभु मैं तो मति-श्रुत ज्ञान मेरे पास न? केवलज्ञान तो है नहीं? केवलज्ञान पूर्ण होता है। अरे भैया। केवलज्ञान की बात नहीं है। हम तो आत्मा केवलज्ञान से भी भिन्न है ऐसा स्वभाव तुमको बताते है। केवलज्ञान तो नया उत्पन्न होना है। जो उत्पन्न हो वो मैं नहीं। प्रगट होता है वो मैं नहीं जो प्रगट है वो मैं हूँ। आहाहा! अभी टाइम? ९.३० अच्छा। पाव घंटा है बहुत अपूर्व बात है। आचार्य भगवान फरमाते है शुरुआत में समयसार में कि आज तक तूने बहुत काम-भोग-बंधन की कथा सुनी और परिचय भी किया मगर एकत्व-विभक्त आत्मा की बात आज तक तूने सुनी नहीं, ऐसी बात सुनाने का मेरे को भाव आ गया है।

श्रोता - प्रश्न बीच में नहीं

उत्तर: चालू में मज़ा नहीं आता रात को प्रश्न जरूर करना। चिट्ठी में लिखकर दे देना भाई ज़रूर लिखकर देना एक नहीं सौ प्रश्न करना। एक नहीं सौ प्रश्न करना। हमारी जितनी शक्ति है वो शक्तिसे हम खुलासा करेंगे। आहाहा! चालु में गड़बड़ होती है।

प्रभु! मैं एकत्व विभक्त आत्मा की बात करने का आशय मेरा है, अभिप्राय है। एकत्व विभक्त इसका अर्थ क्या है? कि अनंत दर्शन ज्ञान आनंद से मैं परिपूर्ण एकत्व उससे एकत्व, अनंत गुण से एकत्व-एकपना। एकत्व-एकपना, एकपना है आत्मा। आत्मा में ज्ञान-दर्शन-चारित्र-सुख-वीर्य है। अनंत अनंत विभुत्व शक्ति, प्रभुत्व शक्ति, अनंत अनंत शक्ति, एक एक शक्ति परिपूर्ण है। एक एक शक्ति परिपूर्ण है। निरपेक्ष है, कर्म के साथ उसका सम्बन्ध नहीं है। और निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध से जुदा आत्मा है।

निमित्त-नैमित्तिक सम्बन्ध होता है - अनात्मा में होता है। मेरे में होता नहीं है। आहाहा! मैं तो त्रिकाल भगवान परमात्मा वर्तमान हूँ| आहाहा! ऐसे ज्ञान दर्शन से मैं परिपूर्ण हूँ| तो एकत्व याने अनन्तगुण से एकपना अनन्तगुण से एकपना। गुण तो अनंत है और एक गुण दूसरा गुणरूप नहीं है। ऐसा अतदभाव अंदर है। होने पर भी वो एकपने रहता है। आहाहा! एक पहलु एकत्व का तो ये और विभक्त हूँ। केवलज्ञान से मैं भिन्न हूँ। किसने कहा? कुन्दकुन्द आचार्य भगवान ने लिखा। प्रमत्त-अप्रमत्त से मैं रहित हूँ। प्रमत्त याने १ गुणस्थान से ६ गुणस्थान तक वो प्रमत्त दशा कही जाती है। और ७ से १४ गुणस्थान तक अप्रमत्त। अप्रमत्त में यथाख्यात चारित्र आ गया और केवलज्ञान भी (आ गया)। इसका अर्थ पर्याय नहीं है ऐसा नहीं है ऐसा नहीं। पर्याय तो है। पर्याय की अस्ति मगर मेरे मैं नास्ति ऐसी मेरी अस्ति उसका जो अनुभव उसका नाम मस्ती। एकत्व विभक्त आत्मा की बात मैं बताऊंगा। बाद में ऐसा कहा कि मैं तो बताऊंगा मगर अनुभव से प्रमाण करना। केवल सुनने से प्रमाण नहीं होता है। कोई पहला के काल में ऐसा जब शक्कर था न शक्कर खांड (चीनी) नहीं। शक्कर बहुत महँगी होती थी।

मुमुक्षु: बूरा

उत्तरः बूरा नहीं गट्ठा। गट्ठा मिश्री हाँ तो बहुत महँगी थी। ३०-४०-५० रुपये किलो तभी। समजे? तभी ठगलोग भी निकलता है न कभी ठगलोग कमाने के लिए निकलता है तो शक्कर के साथ फटकड़ी रखे फटकड़ी समझे है न? फिटकड़ी। सफ़ेद होती है न? ये भी सफ़ेद वो भी सफ़ेद। तो ऐसा बहन है न बैरा लोग सच्चा लेडीज वो थोड़ा लोभी भी होता है। एक शक्कर वाले शक्करवालाने ६० रुपया भाव दिया इसने (ठगने) कहा ३० रुपये में दूंगा। अच्छा २ किलो दे दो। आहाहा! तो दो किलो ले लिया। उसकी परीक्षा नहीं किया। परीक्षा करके प्रमाण नहीं किया। समझे? सफ़ेद वो भी सफ़ेद वो भी सफ़ेद आहाहा! अव्याप्ति, अतिव्याप्ति दोष रहित वो लक्षण है। वो तो अलग बात है|

तो वो सफ़ेद देखकर ले गई! क्या हुआ? तो वो लड़की का ससुर आया सासरा तेज़ मगज़ वाला, बहुत तेज मगजवाला होता है न! क्रोधी कोई। आया तो उसके लिए दूध बनाया, चाय बनाया उसके लिए शक्कर डाल दिया। उसने पीया ये क्या है? कपको फेंक दिया। आहाहा! समझे? ऐसे धर्म के नाम में जीव ठगाया। धर्म का सच्चा स्वरुप क्या है वो जानता नहीं है। अज्ञानी ऐसा करो तो धर्म ऐसा करो तो धर्म, धर्म नहीं होता है कर्म हो जाता है। धर्म का नाम से कर्म हो जाता है। धर्म हो जावे तो तो नयाल हो जावे है। धर्म याने आत्मा का अनुभव।

अनुभव रत्न चिंतामणि, अनुभव है रस कूप,
अनुभव मारग मोक्षनो, अनुभव मोक्ष स्वरूप।

सर्वज्ञ भगवान का आगम में अनुभूति का फरमान है। आत्मा का अनुभव करो। ज्ञानानुभूति, आनंदानुभूति उसका नाम धर्म है। तो आचार्य भगवान फरमाते है कि सुन भैया तेरा प्रश्न है कि दशा में दुःख है, मगर दशा में दुःख होने पर भी पर्याय में दुःख होने पर भी अभी तू थक गया है तो प्रश्न है कि दुःख का अभाव कैसे हो? दुःख का स्थान पर सुख प्रगट कैसे हो ये तेरा प्रश्न है। तो सुन, **तो उस स्वभाव में रहता हुआ, लीन होता हुआ मैं इन क्रोधादि सर्व आस्त्रवों को क्षय को प्राप्त कराता हूँ**। आहाहा! ऐसी मूल गाथा हुई।

अब टीका। टीका याने अर्थ का विस्तार। अमृतचंद्र आचार्य भगवान हुआ। एक हज़ार साल पूर्व। पीछे बाद में नित्य आनंद का भोजन करने वाला। मुनिराज का लक्षण क्या है? नित्य अतीन्द्रिय आनंद का भोजन करता है। आहाहा! क्षण में निर्विकल्प और क्षण में सविकल्प दशा आ जाती है। हाळता चाळता सिद्ध है। मुनिराज की बात कोई अलौकिक होती है। तो उन्होंने ये टीका बनाया एक हज़ार साल बाद में। टीका याने विस्तार। संस्कृत में लिखा वो आजसे २०० साल पहेले ऐसा बनाव बना जयपुर में जयचन्द पंडित छाबड़ा। जयचन्द जी छाबड़ा। पंडित टोडरमल जी के साथ गोष्टी में सब आठ दस पंडित साथ में उस टाइम में बहुत अच्छा चर्चा चलती थी। तो ये समयसार तो संस्कृत में था। उसका ढूंढारी, हिंदी में अनुवाद नहीं था। सिर्फ संस्कृत में बात चलती थी। तो जयचन्द पंडित को विचार आया कि इसका अनुवाद करना चाहिए। तो सामान्य जनसमुदाय इसका मर्म समझ सके कि आत्मा का स्वरुप क्या है। है क्यूंकि इसमें तो आत्मा के स्वरुप की बात है। तो दूसरा पंडित ने कहा कि ये बात तो ऐसी है कि ये तो अकेला निश्चय का ग्रन्थ है। निश्चय का ग्रन्थ पढ़ने से जीव स्वछन्दी हो जायेगा। इधर उधर चर्चा तो होती है न? चर्चा हुई तो पंडितजी ने कहा कि शक्कर खाने से गधा तो मर जाता है। ऐसी कहावत है। तो क्या मनुष्य

को शक्कर नहीं खाना? बहुत अच्छी बात है यह बात तो सोचने जैसी है। तो सबने तय कर लिया कि अनुवाद करना चाहिए। तो अनुवाद कौन करे? यह बात आयी तो सबने कहा यह पंडित जयचन्द जी छाबड़ा है, बराबर। बाद में सब देख लेवे। वो अनुवाद करे, बादमें सब पंडित देख लेवे कोई फेरफार हो तो, तो अनुवाद हो गया। अनुवाद हुआ ढूंढारी में पहले। ढूंढारी में ऐसा पाना था।

ढूंढारी का बाद में, एक श्रीमद राजचन्द्र हो गया सौराष्ट्र में, मोरबी के पास ववाणिया वहां उनका जन्म था। वो शतावधानी था। शतावधान करते थे। उन्होंने विचार किया की ये समयसार, परमात्मप्रकाश आदि का ये चलती हिंदी भाषा में अनुवाद करना ठीक है। तो उसने परम श्रुत प्रभावक मंडल ऐसी स्थापना किया तो वहां ये ढूंढारी पर से समयसार का चलती हिंदी भाषा में अनुवाद करके छप गया। तो ७५ की साल में वो छपा और ७८ की साल में पूज्य गुरुदेवके हाथ में यह शास्त्र आया। वो मुखपट्टी में थे। स्थानकवासी साधू। आहाहा! हाथ में आया समयसार शास्त्र। झवेरी ने परीक्षा कर लिया। ये समयसार शास्त्र तो अशरीरी होने का है, निमित्त। आहाहा! उसने अंदर में बहुत गहराई से मनन किया।

वो क्या करते थे? उपवास करके नदी के पास बहार चले जाते थे शास्त्र लेकर। और वहां एकांत में सारा दिन स्वाध्याय करते थे। और उपाश्रय में स्वाध्याय करे और कोई पैर छूने, नमस्कार करने आवे तो सामने देखे नहीं किसी को। आहाहा! ऐसी धुन चढ़ गयी आहाहा! इस समयसार शास्त्र से इसका भव का अंत आ गया ऐसा समयसार शास्त्र तो कोई अलौकिक निधि है। आहाहा!

एक दफे ऐसा हुआ कि दो मित्र था दो, दोनों मित्र एकदम गरीब दोनों मित्र साधारण झोपड़े में रहते थे। खाने का भी नहीं। एक को ऐसा हुआ कि मैं साधू हो जाऊ अन्यमति का। तो साधू हो गया अन्यमति का तो उसके गुरु साथ तप करने लगा फिर उसको कोई ऐसी लब्धि प्रगट हो गई। अज्ञानी को भी लब्धि तो प्रगट होती है। तो उसकी लब्धि में क्या आया? कि जो लोहा सोना बन जावे। वो पानी मन्त्र पढ़के छिटकाव करे तो लोहा सोना हो जावे। तो उसको विचार आया कि मेरा मित्र गरीब है तो वहाँ जाकर लिखकर पुस्तक दूँ। तो वहां गया तो कहा कि यह पुस्तक है वांचकर (पढ़कर) उसका प्रयोग करके सोना बना लेना और मैं दूसरी दफा आऊंगा तब मोटर और बंगला तेरे पास होगा। तो कहे जरूर सोना बने तो गरीब कहा से रहवे? पुस्तक ले लिया बराबर उसको संभालकर तिजोरी में रख दिया। चाबी रखी बराबर अपने पास। एक वर्ष बाद वो आया दूर से देखा वही झोपड़ा। गया अंदर कि मेरा मन्त्र खोटा (गलत) है कि क्या है? आया कि वो बुक का प्रयोग। नहीं बुक तो मैंने बहुत संभालकर रखी है। बर्बर ताल चाबी लगाकर तिजोरी में रखी है। ऐसे समयसार तो सबके घर में है मगर भगवान बनने की विधि है तो खोलकर पढ़ना भी नहीं है। पढ़ते है तो ऊपर ऊपर से शिष्टाचार से पढता है। एक पाना पढ़ा हो गया तो हो गया मंदिर में गया भगवान का दर्शन कर लिया लिखा है। ऐसा नहीं भेदज्ञान का मन्त्र है इसमें।

णमोकार मन्त्र तो हमको माता पिता से मिला जन्म से णमोकार तो। मगर भेदज्ञान का मन्त्र गुरुदेव ने दिया। जयपुर की शिविर के टाइम मैंने कहा कि ये भेदज्ञान का मन्त्र से इससे देव हाज़िर होता है। तो सब खुश हुए ये पंडितजी अच्छा। प्राइवेट में पूछ लेवे की ये मन्त्र क्या है तो देव हाज़िर होवे नो देव के पास मांग लेंगे। ऐसी चर्चा होने लगी। दूसरे दिन मेरे कान में आया कि आपकी बात तो ऐसी चलती है। दूसरे दिन कहा कि भाई ये देव की बात नहीं है। चैतन्य देव प्रगट होता है। चैतन्य देव की बात है वो देव

की बात नहीं है। आहाहा! ऐसी बात, समयसार जी शास्त्र तो भागवती शास्त्र है। आहाहा!

मुमुक्षुः दो मित्र की बात ज़रा अधूरी रह गई अभी पूरी नहीं हुई।

उत्तरः नहीं पूरी हो गई। बताया ना ताला चाबी में ऐसे समयसार को ताला चाबी में सबने रख दिया एक दफे मैं खाना खाने गया समयसार माँगा तो समयसार तो था उसके पास। समजे? ला के दिया पान्ने सब पैक थे तो मैंने कहा आप स्वाध्याय नहीं करते? माफ़ करो मैं स्वाध्याय नहीं किया मैंने संभाल के रखा है। जिनवाणी को वंदन करता हूँ रोज़, आहाहा! नमस्कार करता हूँ। नमस्कार मन्त्र से कल्याण होता नहीं है। नमस्कार से शुभभाव होता है और शुभभाव का फल दुखी होता है। आहाहा! अशुभ का फल भी दुःख और शुभ का फल भी दुःख। और धर्म का फल सुख है। धर्म करना वो अपूर्व चीज़ है। हो गया टाइम।

ॐ

This pravachan was typed quickly for Pariyushan. Please report errors
यह प्रवचन, पर्युषण के लिए जल्दी लिखा है। कृपया त्रुटियाँ भेजें
WhatsApp +91 96648 57990 या rajesh@AtmaDharma.com